

कलीसिया में स्त्रियाँ: एक बाइबलीय सर्वेक्षण

एफ. एफ. ब्रूस (F. F. Bruce)

एफ. एफ. ब्रूस · जर्मन अनुवाद: Hans-Jörg Ronsdorf · अप्रैल 2021 · अक्टूबर 2026 में संशोधित

“Women in the Church: A Biblical Survey”, Christian Brethren Review 33 (1982): 7-14.

व्यक्ति परिचय: फ्रेडरिक फ्राइवी ब्रूस (Frederick Fyvie Bruce), जो एफ. एफ. ब्रूस के नाम से जाने जाते हैं (जन्म 12 अक्टूबर 1910, एल्लिन, स्कॉटलैंड; मृत्यु 11 सितंबर 1990, बक्सटन, डर्बीशायर, इंग्लैंड), एक स्कॉटिश सुसमाचारवादी (इवैन्जेलिकल) धर्मविज्ञानी थे। कुछ लेखक उन्हें बीसवीं सदी के ब्रिटिश धर्मविज्ञान के सबसे प्रभावशाली नए नियम के विद्वानों में से एक मानते हैं।

ब्रूस ब्रदरन आंदोलन के एक सुसमाचार-प्रचारक के पुत्र थे और जीवन भर ओपन ब्रदरन (Offene Brüder) के सक्रिय सदस्य रहे, यद्यपि उन्होंने ब्रदरन आंदोलन की शिक्षा का हिस्सा माने जाने वाले डिस्पेन्सेशनलिज़्म (युग-विभाजनवाद) को स्वीकार नहीं किया।

1959 में वे मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में बाइबल-विज्ञान और व्याख्या-शास्त्र के “जॉन राइलैंड्स प्रोफ़ेसर” बने। इस पद पर रहते हुए उन्होंने अपनी पीढ़ी के किसी भी अन्य प्रोफ़ेसर से अधिक बाइबल-अध्ययन संबंधी शोध-प्रबंधों का मार्गदर्शन किया। कहा जाता है कि उन्हें बाइबल का बहुत गहरा ज्ञान था; विद्यार्थी बताते हैं कि वे व्याख्यानों में इब्रानी और यूनानी मूल पाठ के साथ-साथ कई अंग्रेज़ी बाइबल अनुवाद भी कंठस्थ उद्धृत करते थे।

अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण में वे एक सुसमाचारवादी के रूप में जाने जाते थे। वे सुसमाचारवादी छात्र-आंदोलन इंटरवर्सिटी (InterVarsity) के उत्साही समर्थक थे और 20 से अधिक वर्षों तक (1956–78) Christianity Today के सलाहकार सह-संपादक रहे।

अपनी पीढ़ी के अधिकांश सुसमाचारवादियों के विपरीत, पौलस की पत्रियों की अपनी व्याख्या के आधार पर वे कलीसियाई सेवा में स्त्रियों के समान अधिकार के दृढ़ योद्धा थे।

जर्मन भाषा में उनके बहुत अधिक प्रकाशन नहीं थे। मेरी युवावस्था में सबसे प्रसिद्ध पुस्तक थी “Die Glaubwürdigkeit der Schriften des Neuen Testamentes” (नए नियम के लेखों की विश्वसनीयता), 1976। जिन्हें जर्मन प्रकाशनों में रुचि हो, वे यहाँ पुरानी पुस्तकों की दुकान में खोज सकते हैं:

“F. F. Bruce” – Bücher gebraucht, antiquarisch & neu kaufen (booklooker.de) (जर्मन में)

प्रारंभिक टिप्पणियाँ

सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होने की घटना और उससे जुड़े अनुकूलन बाइबल में ही बार-बार दिखाई देते हैं। हम इस्राएली खानाबदोशों को देखते हैं, जो जंगल से निकलकर कनान के स्थायी कृषि-जीवन में प्रवेश करते हैं; हम देखते हैं कि राजतंत्र के अधीन यह किसानी खेती किस प्रकार एक शहरी, व्यापार-केंद्रित अर्थव्यवस्था को स्थान देती है – उन सब बुराइयों के साथ, जिनके विरुद्ध इस्राएल के महान भविष्यद्वक्ताओं ने आवाज़ उठाई। हम निर्वासन के बाद के उस अनुकूलन को देखते हैं, जिसमें इस्राएल को एक विशाल, सुव्यवस्थित साम्राज्य के अंग के रूप में जीना पड़ा – पहले फ़ारसी, फिर यूनानी (हेलेनिस्टिक), फिर रोमी। नए नियम की (समय की दृष्टि से) संकरी

सीमाओं के भीतर भी हम देखते हैं कि सुसमाचार अपने यहूदी और फ़िलिस्तीनी परिवेश से निकलकर भूमध्यसागरीय संसार के अन्यजातीय वातावरण में रोपा जाता है। इस दृष्टि से यूहन्ना का तरीका विशेष रूप से ध्यान खींचता है। वह मसीह के मूल सुसमाचार को सुरक्षित रखते हुए उसकी स्थायी और सार्वभौमिक वैधता को एक नई भाषा-शैली में ऐसे श्रोताओं के लिए व्यक्त करता है, जो उन लोगों से काफ़ी भिन्न थे जिन्हें यह पहले सुनाया गया था।

हमारे प्रभु के समय में शास्त्रियों और फ़रीसियों की एक मुख्य चिंता यह थी कि वे अपने समकालीनों पर एक ऐसी व्यवस्था-संहिता लागू करें, जो मूल रूप से एक बिल्कुल अलग जीवन-शैली में दी गई थी। उदाहरण के लिए, सब्ब की व्यवस्था एक सरल चरवाही या कृषि-अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखकर बनाई गई थी, जिसमें “काम” एक स्पष्ट रूप से समझी जाने वाली धारणा थी। परन्तु मसीही युग के आरंभ की अधिक जटिल परिस्थिति में कौन-कौन सी गतिविधियाँ “काम” के निषेध के अंतर्गत आती थीं? शास्त्रियों ने समझा कि लोगों को स्पष्ट दिशा देने के लिए एक विस्तृत परिभाषा आवश्यक है: उनकी एक पाठशाला में “काम” की उनतालीस श्रेणियाँ निर्धारित की गईं, जो सब की सब सब्ब के दिन वर्जित थीं।

यह सांस्कृतिक परिस्थितियों की समस्या से निपटने का एक तरीका था; यीशु का मार्ग दूसरा था। उन्होंने मूल सिद्धांतों की ओर लौटना पसंद किया: हर वह कार्य, जो आज्ञा के मूल उद्देश्य को आगे बढ़ाता था, उसे पूरा करता था; हर वह कार्य, जो उस मूल उद्देश्य में बाधा डालता था, उसका उल्लंघन करता था। परन्तु यह लोगों पर छोड़ा गया था कि वे स्वयं तय करें कि कौन से कार्य मूल उद्देश्य को आगे बढ़ाते हैं और कौन से उसमें बाधा डालते हैं: वे कोई सटीक नियम नहीं बनाना चाहते थे।

सुसमाचार पुराने नियम के साथ व्यवहार करने में शास्त्रियों के मार्ग और यीशु के मार्ग के बीच का अंतर दिखाते हैं। उसके बाद का कलीसिया का इतिहास, हमारी अपनी पीढ़ी तक, नए नियम के साथ व्यवहार करने में और उसके सिद्धांतों को बदलती परिस्थितियों पर लागू करने के विभिन्न प्रयासों में यही अंतर दिखाता है। कलीसियाई क़ानून, चाहे उसे स्पष्ट रूप से यह नाम दिया जाए या नहीं, शास्त्रियों के मार्ग का – प्राचीनों की परंपरा का – एक उदाहरण है।

जब नए नियम का सदा का संदेश आज हमारे व्यावहारिक ध्यान में आता है, तो सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रभाव को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। जिस स्थानीय और समय-बद्ध परिस्थिति में यह संदेश पहली बार पहुँचाया गया था, उस पर विचार करना आवश्यक है, यदि हमें पहचानना है कि उसका स्थायी संदेश वास्तव में क्या है – विशेषकर तब, जब हम यह सीखना चाहते हैं कि उसे अपनी संस्कृति की स्थानीय और समय-बद्ध परिस्थितियों में नए सिरे से कैसे लागू करें।

जो मिशनरी सुसमाचार को अपनी परंपरा से भिन्न परंपरा वाले देशों में ले जाते हैं, उनके संबंध में हम इसे स्वाभाविक मानते हैं। हमारे तात्कालिक और विश्वव्यापी संपर्क-साधनों के बावजूद सांस्कृतिक आघात एक वास्तविकता बना रहता है – एक ऐसी वास्तविकता, जो दोनों दिशाओं में काम करती है। आइए, इसी प्रकार हम यह मानकर चलें कि जिन संस्कृतियों में सुसमाचार और पत्रियाँ पहली बार सामने आए, उनके प्रति एक संवेदनशील जागरूकता हमें इन दस्तावेज़ों को उनके अपने परिवेश में समझने में सहायता करेगी – ताकि फिर हम अपने जीवन-परिवेश में भी उनसे लाभ उठा सकें।

I. सृष्टि में

सृष्टि-वृत्तांतों की मूल शिक्षा यह है कि जब परमेश्वर ने मनुष्य (आदम) को अपने स्वरूप में रचा, तो उसने उन्हें नर और नारी करके रचा (उत्पत्ति 1:27)।

उत्पत्ति 1 के वृत्तांत में प्राथमिकता का कोई प्रश्न नहीं उठता, श्रेष्ठता का तो बिल्कुल नहीं। उत्पत्ति 2 में स्त्री को पुरुष के (समय में) बाद रचा जाता है, ताकि वह “एक ऐसी सहायक हो जो उससे मेल खाए” – न कि, जैसा एक बाद के व्याख्याकार ने कहा, “वह केवल परमेश्वर के लिए, वह उसमें होकर परमेश्वर के लिए”। इस सृष्टि-वृत्तांत में पुरुष की (समय की दृष्टि से) पहल का अर्थ उसकी श्रेष्ठता नहीं है। इस दिशा में किए गए किसी भी दावे का उत्तर इस प्रतितर्क से दिया जा सकता है कि जो सबसे अंत में रचा गया, वही रचना का मुकुट है – परन्तु दोनों तर्क किसी परिणाम तक नहीं पहुँचाते।

II. पतन में

सृष्टि-वृत्तांतों में नहीं, बल्कि पतन के वृत्तांत में पहली बार एक लिंग की दूसरे पर श्रेष्ठता का उल्लेख होता है। और यहाँ किसी अंतर्निहित श्रेष्ठता की बात नहीं है, बल्कि ऐसी श्रेष्ठता की, जो बलपूर्वक चलाई जाती है। सृष्टिकर्ता के हवा से कहे गए शब्द, “तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा” (उत्पत्ति 3:16), यह अर्थ रखते हैं कि हमारी पापमय मानवीय दशा में पुरुष स्त्री की अपने प्रति स्वाभाविक लालसा का अनुचित लाभ उठाकर उस पर प्रभुता करता और उसे दबाता है। **स्त्री को दबाया जाना वास्तव में पुरुष के पतित स्वभाव का एक लक्षण है।**

यदि मसीह के कार्य में पतन के परिणामों पर विजय सम्मिलित है, तो स्त्री की मुक्ति के लिए उसके कार्य का प्रभाव स्पष्ट है।

III. नई सृष्टि में

(क) यीशु का दृष्टिकोण और उनकी शिक्षा

यीशु एक पुरुष-प्रधान संस्कृति में जन्मे। उसकी कुछ मूल मान्यताओं को उन्होंने चुपचाप और अप्रत्यक्ष रूप से कमजोर किया। उदाहरण के लिए, तलाक़ के प्रश्न पर उनका व्यवहार न केवल मूल सिद्धांतों की ओर उनकी निरंतर अपील को दर्शाता है; उसका सबसे महत्वपूर्ण व्यावहारिक प्रभाव एक ऐसे असंतुलन को ठीक करना था, जो स्त्रियों के लिए बहुत हानिकारक था। उनके पुरुष चेलों ने इसे तुरंत पहचान लिया, जैसा उनकी प्रतिक्रिया से प्रकट होता है। उन्होंने कहा, “यदि कोई पुरुष किसी भी परिस्थिति में अपनी पत्नी को तलाक़ नहीं दे सकता, तो विवाह न करना ही अच्छा है” (मत्ती 19:10)।

इस तथ्य से कि मूल बारह प्रेरित सब पुरुष थे, कभी-कभी अनुचित निष्कर्ष निकाले गए हैं। परन्तु वास्तव में हमारे प्रभु के पुरुष चले उनकी स्त्री चेलियों की तुलना में, विशेषकर उनके अंतिम घंटों में, एक दयनीय छवि प्रस्तुत करते हैं; और स्त्रियाँ ही थीं, जिन्हें उन्होंने सबसे पहले अपने पुनरुत्थान का समाचार पहुँचाने का विशेषाधिकार सौंपा।

वे स्त्रियों के साथ बिल्कुल स्वाभाविक और सहज रूप से सच्चे व्यक्तियों जैसा व्यवहार करते थे। उन्होंने बैतनिय्याह की मरियम के ध्यान से सुनने वाले कानों और हृदय तक अपनी शिक्षा पहुँचाई, जबकि सच्ची आराधना

का स्वरूप उन्होंने किसी और पर नहीं, एक सामरी स्त्री पर प्रकट किया। उनके चेले, जिन्होंने उन्हें कुएँ पर इस अवस्था में पाया, चकित थे कि वे एक स्त्री से बात कर रहे थे: किसी धार्मिक शिक्षक के लिए ऐसा करना अधिक से अधिक समय की बर्बादी था और बुरी से बुरी स्थिति में एक आत्मिक खतरा।

(ख) पौलुस का दृष्टिकोण और उनकी शिक्षा

पौलुस अपने सहकर्मियों का – चाहे पुरुष हों या स्त्री – अनेक बार उल्लेख करते हैं, **परन्तु उनमें सेवा या पद का कोई अंतर संकेतित नहीं होता।** स्त्री सहकर्मियों में हमें फ़ोबे (Phöbe) याद आती है, किंखिया की कलीसिया की सेविका (डीकन) (न कि “डीकनेस”!) (रोमियों 16:1-2), जिसने रोमियों की पत्नी को सुरक्षित पहुँचाकर विश्वव्यापी कलीसिया की अमूल्य सेवा की। और फ़िलिप्पी की यूओदिया और सुन्तुखे, जिनकी पौलुस ने इस बात के लिए सराहना की कि वे क्लेमेंस और अन्य लोगों के साथ सुसमाचार में उसके कंधे से कंधा मिलाकर परिश्रम करती रहीं (फ़िलिप्पियों 4:3)। पौलुस “प्रेरित” शब्द का प्रयोग लूका से अधिक व्यापक अर्थ में करते हैं, और संभवतः वे उनमें कम से कम एक स्त्री को भी सम्मिलित करते हैं – यदि रोमियों 16:7 में अन्टुनीकुस के साथ नामित व्यक्ति यूनिया (Junia), एक स्त्री (जैसा क्रिसोस्टोम (Chrysostomus) ने समझा) है, न कि यूनियास (Junias), एक पुरुष।

पौलुस की शिक्षा-दीक्षा की दृष्टि से देखें, तो वे एक क्रांतिकारी विचार व्यक्त करते हैं, जब वे घोषित करते हैं कि “मसीह यीशु में ... न कोई यहूदी है, न यूनानी; न कोई दास, न स्वतंत्र; न कोई नर, न नारी” (गलातियों 3:28)। संभवतः उनके समय में भी यहूदी प्रातःकालीन प्रार्थना में वह अंश था, जिसमें धर्मपरायण पुरुष परमेश्वर का धन्यवाद करता है कि उसने उसे अन्यजाति नहीं, यहूदी; दास नहीं, स्वतंत्र; स्त्री नहीं, पुरुष बनाया। इसके द्वारा तीनों विशेषाधिकार मिटा दिए जाते हैं: पौलुस के समय के यहूदी धर्म में वे चाहे कितने ही वास्तविक रहे हों – मसीह में वे समाप्त कर दिए गए हैं। यहूदी धर्म में केवल पुरुष ही अपने शरीर पर अब्राहम के साथ बाँधी गई वाचा की दृश्य मुहर पाते थे; पौलुस के खतना-रहित सुसमाचार का एक परिणाम यह है कि स्त्रियों की तुलना में पुरुषों का ऐसा हर धार्मिक विशेषाधिकार समाप्त हो जाता है। आज तक रूढ़िवादी यहूदियों में किसी आराधनालय-सभा की कोरम-संख्या (निर्णय लेने के लिए आवश्यक न्यूनतम संख्या) दस स्वतंत्र पुरुष है; यदि दस पुरुष उपस्थित न हों, तो आराधना आरंभ नहीं हो सकती। (वैसे, हम आनंदित हो सकते हैं कि मसीही सभाओं के लिए हमारे पास “दो या तीन” की कम कठोर संख्या है, और इस विषय में कुछ नहीं कहा गया कि वे पुरुष हों या स्त्रियाँ।) इसके विपरीत, पौलुस मसीही स्त्रियों से अपेक्षा करते हैं कि वे कलीसिया की सभाओं में एक ज़िम्मेदार भूमिका निभाएँ। और जब वे सार्वजनिक व्यवस्था की चिंता के कारण उनसे प्रार्थना या भविष्यद्वाणी करते समय अपना सिर ढकने को कहते हैं, **तो ओढ़नी उनके इस अधिकार का चिह्न है कि वे इस प्रकार अपनी मसीही स्वतंत्रता का प्रयोग करें – न कि इस बात का चिह्न कि किसी और का उन पर अधिकार है।**

आराधना में स्त्रियों की सहभागिता के विषय में पौलुस अन्य स्थानों पर जो कुछ कहते हैं, उसका कोई भी अंश ऐसे अर्थ में नहीं समझा जा सकता, जो इन मूलभूत घोषणाओं के विरोध में हो। यह उनकी सार्वजनिक स्वतंत्रता पर प्रतीत होने वाले उन प्रतिबंधों पर भी लागू होता है, जो 1 कुरिन्थियों 14:34 (“स्त्रियाँ कलीसिया की सभा में चुप रहें”) और 1 तीमुथियुस 2:11 (“स्त्री को चुपचाप पूरी अधीनता में सीखना चाहिए”) में हैं। वास्तव में 1 कुरिन्थियों 14:34-35 के पाठ के विषय में (जिसे “पश्चिमी” हस्तलेख-परंपरा पद 40 के बाद रखती है) या पास्टरीय पत्रियों के प्रत्यक्ष लेखकत्व के विषय में आलोचनात्मक प्रश्न उठाए गए हैं। ये प्रमाण 1 कुरिन्थियों 14:34-35 को प्रामाणिक पाठ से हटाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं; इन पदों में कहा गया निषेध ऐसे प्रश्न पूछने से संबंधित है, जिनमें भविष्यद्वाणी के कथनों पर कोई निर्णय निहित हो (कम से कम उनका संदर्भ यही संकेत देता है)। जहाँ तक पास्टरीय पत्रियों

का प्रश्न है, हमने उन्हें धर्मशास्त्र के प्रामाणिक (कैनन के) अंश के रूप में ग्रहण किया है, और यह 1 तीमुथियुस 2:9-15 पर भी लागू होता है। मैं क्रिसोस्टोम से सहमत होने की ओर झुकता हूँ, जो यूनानी नया नियम अपनी मातृभाषा में पढ़ते थे, कि 1 तीमुथियुस 2:9-10 में एक निर्देश है (जो 1 कुरिन्थियों 11:2-16 की शिक्षा को आगे बढ़ाता है) कि जब स्त्रियाँ सार्वजनिक प्रार्थना में भाग लें, तो उनके वस्त्र और आचरण उचित हों। परन्तु इस अध्याय के पद 11 और 12 में स्त्रियों को बिल्कुल स्पष्ट रूप से शिक्षा देने या शासन करने की अनुमति नहीं दी गई है। दोनों तर्कों की प्रासंगिकता – (क) कि आदम हव्वा से पहले रचा गया और (ख) कि हव्वा वास्तव में धोखा खा गई, जबकि आदम जानता था कि वह क्या कर रहा है जब उसने ईश्वरीय आज्ञा तोड़ी – तुरंत स्पष्ट नहीं होती। मैं इस मत से बहुत प्रसन्न नहीं हूँ कि पहला तर्क ज्येष्ठाधिकार के सिद्धांत का एक प्रारंभिक उदाहरण है, जो पहिलौठे के विशेष अधिकारों को मान्यता देता है।

व्याख्या (एक्सेजेसिस) पाठ का अर्थ उसके मूल परिवेश में निर्धारित करने का प्रयास करती है। परन्तु जब व्याख्या अपना काम कर चुकी हो, तब पाठ को लागू करते समय हमें नए नियम को नियमों की पुस्तक की तरह बरतने से बचना चाहिए। जब हम नए नियम के पाठ को अपनी परिस्थिति पर लागू करते हैं, तो हमें उसके साथ वैसा व्यवहार नहीं करना है, जैसा हमारे प्रभु के समय के शास्त्री पुराने नियम के साथ करते थे। **जो बात किसी विशेष परिस्थिति में विश्वासियों के मार्गदर्शन के लिए थी, उसे हमें ऐसी व्यवस्था नहीं बना देना चाहिए जो सब युगों के लिए बाध्यकारी हो।**¹ (यह सामान्य रूप से माना जाता है कि 1 तीमुथियुस की पत्री में आगे विधवाओं के विषय में दिए गए निर्देशों का आज अक्षरशः पालन करना आवश्यक नहीं है, यद्यपि उनके मूल सिद्धांत का ध्यान रखा जाना चाहिए।) **यह एक व्यंग्यपूर्ण विरोधाभास है कि पौलुस, जो अपने द्वारा विश्वास में लाए गए लोगों को व्यवस्था के दासत्व से छुड़ाने के लिए इतने उत्सुक थे, बाद की पीढ़ियों के लिए व्यवस्था-दाता बना दिए जाएँ। आत्मा की जो स्वतंत्रता किसी एक परिस्थिति में कुछ दिशा-निर्देशों के द्वारा सुरक्षित रखी जा सकती है, वह किसी नई परिस्थिति में भिन्न कार्य-पद्धति की माँग कर सकती है।**

स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि किन मानदंडों के आधार पर प्रेरितों की पत्रियों में उन तत्वों के बीच, जिनकी वैधता स्थानीय और अस्थायी है, और उन तत्वों के बीच, जिनकी वैधता सार्वभौमिक और स्थायी है, निश्चित रूप से अंतर किया जा सकता है। यह प्रश्न इतना बड़ा है कि यहाँ उस पर विस्तार से चर्चा नहीं की जा सकती। फिर भी, जब पौलुस के लेखों की बात आती है, तो स्वतंत्रता पर उनका उत्कट बल एक विश्वसनीय कसौटी देता है – वह सच्ची स्वतंत्रता, जो एक ओर आत्मिक दासत्व और दूसरी ओर नैतिक स्वच्छंदता के विपरीत है। वह कसौटी यह है: पौलुस की शिक्षा में जो कुछ भी सच्ची स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है, उसकी वैधता सार्वभौमिक और स्थायी है; जो कुछ भी सच्ची स्वतंत्रता को सीमित करता प्रतीत होता है, वह स्थानीय और अस्थायी परिस्थितियों से संबंधित है। (उदाहरण के लिए, एक दूसरे विषय-क्षेत्र में जाएँ तो, भोजन के प्रश्न पर किसी मसीही की स्वतंत्रता पर लगे प्रतिबंध उस समाज से निर्धारित होते हैं, जिसमें वह पुरुष या स्त्री उस समय रहता है; और ये प्रतिबंध भी उस सर्वोपरि सिद्धांत की अभिव्यक्ति हैं कि सदा दूसरों की भलाई का ध्यान रखा जाए।)

नए नियम को लागू करते समय मूल सिद्धांतों की ओर अपील करने का अर्थ यह स्वीकार करना हो सकता है कि जब आत्मा अपनी सर्वोच्च इच्छा के अनुसार अलग-अलग विश्वासियों को भिन्न-भिन्न वरदान देता है, तो ये वरदान पूरी कलीसिया की भलाई के लिए प्रयोग किए जाने के लिए दिए जाते हैं। यदि वह स्पष्ट रूप से मसीही स्त्रियों को शिक्षा देने या अगुवाई करने के वरदान न देता, तो हमें इसे उसकी इच्छा का प्रमाण मानना चाहिए (1 कुरिन्थियों 12:11)। **परन्तु अनुभव दिखाता है कि वह ये और दूसरे वरदान “बिना भेदभाव के सम्मान” के साथ पुरुषों और स्त्रियों को समान रूप से देता है – निश्चय ही सब स्त्रियों को नहीं, और उसी प्रकार सब पुरुषों को भी नहीं।**

इसलिए स्त्रियों की सेवकाई के इस प्रश्न में किसी बीच के रास्ते या समझौते से संतुष्ट हो जाना असंतोषजनक है, जिसमें उन्हें प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करने की अनुमति तो है, परन्तु शिक्षा देने या अगुवाई करने की नहीं।

मैं इतना और जोड़ना चाहता हूँ कि नए नियम को लागू करते समय इन मूल सिद्धांतों की ओर अपील यह भी माँग करती है कि ऐसा कुछ न किया जाए, जिससे किसी स्थानीय कलीसिया की एकता खतरे में पड़े। जो लोग पवित्रशास्त्र को उस प्रकार समझते हैं, जैसा इस लेख में संकेत किया गया है, उन्हें उसकी इस प्रकार व्याख्या करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। परन्तु उन्हें गति को ज़बरदस्ती तेज़ नहीं करना चाहिए, और न अपनी समझ दूसरों पर थोपने का प्रयास करना चाहिए, जब तक यह समझ कलीसिया में सामान्य स्वीकृति न पा ले। और जब ऐसा हो जाएगा, तो उसे थोपने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

IV. स्त्रियों का याजकपद

इंग्लैंड की कलीसिया (Church of England) और उसके समान समुदायों में स्त्रियों को याजकपद (पुरोहित-पद) पर नियुक्त करने के विषय में हाल की बहसों बड़े पैमाने पर मसीही याजकपद की एक ऐसी धारणा से उपजती हैं, जिसे हम साझा नहीं करते। इन बहसों में बहुतों ने खुलकर स्वीकार किया कि कलीसिया में स्त्रियाँ व्यावहारिक रूप से वे सभी सेवाएँ कर सकती हैं, जो किसी स्वतंत्र कलीसिया (फ्री चर्च) का पास्टर करता है। केवल एक काम है, जो स्त्री नहीं कर सकती: यूखरिस्त (प्रभु-भोज) संपन्न करना।

ऐसी स्थिति में निहित याजकपद की धारणा एक अलग वर्ग की है, जिसमें कुछ चुने हुए पुरुष विधिपूर्वक अभिषिक्त किए जाते हैं। स्त्रियों को इस अभिषेक से बाहर रखने के पक्ष में अनेक तर्क दिए जाते हैं, जिनमें से कुछ दूसरों की अपेक्षा कम विश्वसनीय हैं। दावा किया जाता है कि ऐसे अभिषिक्त याजक की उपस्थिति और क्रिया के बिना प्रभु-भोज की आराधना अनियमित है, यदि अमान्य नहीं।

अब हम कह सकते हैं कि यह ऐसा प्रश्न है जो हमसे संबंधित नहीं है: हम सब विश्वासियों के याजकपद में विश्वास करते हैं; हम किसी सीमित याजक-वर्ग को मान्यता नहीं देते। तो क्या यह ठीक होगा, यदि हमारी किसी प्रभु-भोज की आराधना में कोई स्त्री रोट्टी के लिए धन्यवाद दे और उसे कलीसिया में बाँटे जाने से पहले तोड़े? मेरा अनुमान है कि हमारे कुछ भाई – शायद अनिच्छा से – किसी स्त्री को इसके सिवा और सब कुछ करने देंगे। (यदि मैं उनके साथ अन्याय कर रहा हूँ, तो क्षमा चाहता हूँ; परन्तु मुझे कभी-कभी ऐसा ही आभास होता है।) परन्तु क्यों? मेज़ पर धन्यवाद देना और रोट्टी को पहले से तोड़ना केवल इस अर्थ में याजकीय कार्य हैं कि उन्हें करने वाला व्यक्ति वहाँ उपस्थित अन्य विश्वासियों के प्रतिनिधि के रूप में ऐसा करता है, जो अपने साझा याजकपद का प्रयोग कर रहे हैं – परन्तु मसीह के प्रतिनिधि के रूप में नहीं, जो अपनी मेज़ पर वास्तव में उपस्थित है और जिसे किसी प्रतिनिधि की आवश्यकता नहीं। तो हमारे साझा याजकपद में भागीदार एक मसीही स्त्री भी, एक मसीही पुरुष के समान ही, अपने संगी विश्वासियों की ओर से ऐसा प्रतिनिधि कार्य क्यों न करे? **यह कोई अलंकारिक प्रश्न नहीं है; मैं इसका बाइबलीय उत्तर चाहता हूँ।**

मुझे बताया गया है कि हमारे कुछ महिला-सम्मेलनों में स्त्रियाँ कार्यक्रम का हर दूसरा भाग बड़ी कुशलता से संचालित करती हैं; परन्तु प्रभु-भोज की आराधना के लिए एक-दो “दिखावटी पुरुषों” को बुलाना उचित समझा जाता है, ताकि वे उसकी अगुवाई करें। इसमें आयोजिकाओं का दोष नहीं है; परन्तु वे भली-भाँति जानती हैं कि

यदि उनकी कुछ बहनों के आत्मिक अगुवे यह मान लें कि स्त्रियाँ प्रभु-भोज की आराधना की अगुवाई करती हैं, तो वे बहनें भाग लेने से रोक दी जाएंगी।

जे. एन. डारबी (J. N. Darby) निश्चय ही नारीवादी नहीं थे, परन्तु उनमें सामान्य बुद्धि की गहरी प्रवृत्ति थी। वे इसे कुछ अनुचित मानते थे कि कोई स्त्री एक भजन भी आरंभ करे, “परन्तु मुझे कोई आपत्ति नहीं,” उन्होंने जोड़ा, “यदि वह इसे नम्रता से करे।” परन्तु जब उनसे पूछा गया कि क्या मसीही स्त्रियाँ पुरुषों की अनुपस्थिति में एक साथ प्रभु-भोज ले सकती हैं, तो उन्होंने कहा: “यदि तीन स्त्रियाँ किसी निर्जन द्वीप पर हों, तो मैं नहीं जानता कि वे एक साथ रोटी क्यों न तोड़ें, यदि वे इसे निजी रूप से करें।” इसमें उनकी सामान्य बुद्धि दिखाई दी। निश्चय ही, यदि वे किसी निर्जन द्वीप पर अकेली हों, तो वे इसे निजी रूप के सिवा और किसी रूप में शायद ही कर सकें; और ऐसे दूसरे निर्जन द्वीप भी हैं, जो पानी से घिरे नहीं हैं।

V. ब्रदरन की परंपराएँ और प्रथाएँ

जे. एन. डारबी के उल्लेख से यह आभास हो सकता है कि ब्रदरन आंदोलन – (उदाहरण के लिए) केकरों के विपरीत – आरंभ से ही पुरुष-प्रधान होने की ओर झुका रहा। मैं उस चुनी हुई महिला, थियोडोसिया, विस्काउंटेस पावरस्कॉर्ट (Theodosia, Viscountess Powerscourt) को नहीं भूलता, परन्तु वे भी “अपना स्थान जानती थीं”।

दो कारणों ने इस दृष्टिकोण को बनाए रखा है: एक ओर हमारे (ब्रदरन) आंदोलन में बनी रहने वाली उच्च-कलीसियाई (हाई चर्च) परंपरा, दूसरी ओर पवित्रशास्त्र को लागू करने में हमारी शास्त्रियों जैसी प्रवृत्ति (व्यवस्थावाद कहना तो दूर)।

वास्तव में उल्लेखनीय अपवाद भी थे। बर्लिन में होहेनस्टाउफ़ेनश्ट्रास (Hohenstaufenstraße) की ब्रदरन कलीसिया की स्थापना टोनी फ़ॉन ब्लूखर (Toni von Blücher) (वाटरलू में वेलिंगटन के सहयोगी की एक स्त्री वंशज) और कुछ समान विचार वाली स्त्रियों ने की थी। जब एक पुरुष उनकी संगति में सम्मिलित हुआ, तो वह (उनके विपरीत) इतना अप्रतिभाशाली था कि उसकी उपस्थिति से उनकी कार्य-पद्धति में कुछ नहीं बदला। और मैं स्कॉटलैंड के उत्तर-पूर्व की – राइनी, एबरडीनशायर (Rhynie, Aberdeenshire) की – एक ब्रदरन सभा के विषय में जानता हूँ, जिसने उन्नीसवीं सदी की अंतिम चौथाई में दृढ़ता से इस बात पर जोर दिया कि स्त्रियों को भी पुरुषों के समान सेवा की स्वतंत्रता दी जाए। अपनी युवावस्था में मेरा परिचय एक बहुत वृद्ध महिला, श्रीमती लुंडिन-ब्राउन (Lundin-Brown) से हुआ, जो गर्मियाँ हमारे क्षेत्र में बिताया करती थीं। उनकी मसीही गतिविधि 1859 की जागृति से बहुत पहले तक जाती थी, और सार्वजनिक रूप से सुसमाचार सुनाने के अपने उत्साह के बावजूद वे ब्रदरन की संगति का आनंद लेती थीं। जब मैं उन्हें जानता था, तब वे सौ वर्ष की होने वाली थीं और अपना प्रचार-कार्य जारी नहीं रख सकती थीं, परन्तु उत्तरी स्कॉटलैंड की सबसे परंपरावादी ब्रदरन सभाओं की प्रार्थना-सभाओं में ऊँचे स्वर से भाग लेने से उन्हें कोई रोक नहीं सका। अटल इच्छाशक्ति वाली एक वृद्ध महिला कुछ भी कर गुज़र सकती है!

स्वतंत्रता का ऐसा प्रयोग उस समय के अधिकांश संप्रदायों के लिए असामान्य था। परन्तु उन्नीसवीं सदी के दृष्टिकोण वहाँ टिके रहने की प्रवृत्ति रखते हैं, जहाँ उन्हें पहली सदी के सिद्धांतों से स्पष्ट रूप से अलग नहीं किया जाता।

निष्कर्ष

इस लेख के आरंभ में पहले के समयों की सांस्कृतिक परिस्थितियों के विषय में जो कहा गया, वह हमारे आज के समय पर भी लागू होता है। हम भी सांस्कृतिक रूप से प्रभावित हैं, बस हमें इसका पता नहीं चलता। नारी-मुक्ति आंदोलन ने न केवल हमारी प्रथाओं को, बल्कि हमारे शब्द-भंडार को भी प्रभावित किया है। परन्तु जिस विषय पर हम अब विचार कर रहे हैं, उस जैसे महत्वपूर्ण विषय में यह खेद की बात होगी, यदि हम अपने सोच-विचार और व्यवहार में आत्मा के मार्गदर्शन के बजाय संसार के समकालीन आंदोलनों से प्रभावित हों। वही आत्मा आज पुरुषों और स्त्रियों से हमारे प्रभु और उनके दास पौलुस की सेवा के द्वारा अपना मुक्तिदायी वचन कहता है। **यह सेवा, यह मुक्तिदायी वचन, हमारे लिए पवित्रशास्त्र के पन्नों में स्थिर है: पवित्रशास्त्र का सही उपयोग करने का अर्थ है यह सुनना कि आत्मा उसके द्वारा बीसवीं सदी की कलीसियाओं से क्या कहता है, और साथ ही यह भी सुनना कि उसने पहली सदी की कलीसियाओं से क्या कहा था।**

एफ. एफ. ब्रूस (F. F. Bruce) के विषय में एक उपसंहार से: यद्यपि उनकी कलीसियाई परंपरा नारी-मुक्ति आंदोलन की अगली पंक्ति में बिल्कुल नहीं रही थी, फिर भी वे कलीसियाई सेवा के हर पहलू में तथा सार्वजनिक और निजी जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों और पुरुषों की पूर्ण सहभागिता में विश्वास करते थे। **“व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसी किसी स्थिति का समर्थन नहीं कर सकता, जो कलीसियाई सेवा में पुरुषों और स्त्रियों के बीच सिद्धांततः कोई भेद करती हो ... यदि, जैसा सुसमाचारवादी (इवैन्जेलिकल) मसीही सामान्यतः मानते हैं, मसीही याजकपद एक ऐसा विशेषाधिकार है जिसमें सब विश्वासी भागी हैं, तो इसका कोई कारण नहीं हो सकता कि एक मसीही स्त्री अपने याजकपद का प्रयोग उन्हीं शर्तों पर न करे, जिन पर एक मसीही पुरुष करता है।”**

जर्मन अनुवाद: Hans-Jörg Ronsdorf, 9 अप्रैल 2021 hj-ronsdorf@t-online.de

स्रोत: © 1982 Partnership (<http://www.partnershipuk.org/>)। कृपापूर्ण अनुमति से पुनर्मुद्रित।

दिसंबर 2007 में Robert I. Bradshaw द्वारा इंटरनेट के लिए तैयार किया गया।

<http://www.biblicalstudies.org.uk/>

टिप्पणियाँ

1. अनुवादक की टिप्पणी: हमें बाइबल को किसी रसोई की विधि-पुस्तक (कुकबुक) की तरह नहीं बरतना चाहिए, जैसा मैंने हाल ही में एक प्रवचन में सुना, बल्कि वचन को आत्मा की स्वतंत्रता में और परमेश्वर के जीवित वचन (लोगोस), यीशु मसीह, के साथ एक जीवित संबंध में मार्गदर्शक के रूप में जीना चाहिए।